दैनिक जागरण
रविवार, 23 मार्च 2014 : चैत्र कृष्ण 7, वि. 2070

सर्वोच्च आदर्श है अपने अहंकार का संपूर्ण परित्याग

भाजपा की उठापटक

टिकटों को लेकर जारी मारामारी के बीच भाजपा ने यह जो संकेत दिए कि वह किसी दबाव से प्रभावित होने वाली नहीं वह सही है या नहीं, इसका पता चुनाव परिणाम से ही चलेगा, लेकिन इसमें दो राय नहीं कि जो उठापटक हो रही है उससे आम जनता को कोई सही संदेश नहीं जा रहा है। यदि असंतोष और बगावत के स्वर इसी तरह उठते रहे तो वह माहौल प्रभावित हो सकता है जिसे भाजपा नरेंद्र मोदी की लहर की देन बता रही है। भाजपा को ऐसा कुछ भी नहीं होने देना चाहिए जिससे वह देश के तमाम हिस्सों में उसके प्रति जो अनुकूल वातावरण बना हुआ है उस पर बुरा असर पड़े, लेकिन ऐसा लगता है कि इस दिशा में कोई विचार-विमर्श नहीं किया जा रहा है और इसका प्रमाण यह है कि उम्मीदवारों के चयन में देरी का सिलसिला कायम है। उम्मीदवारों के चयन में जो देरी हुई उसके चलते तमाम स्थानों पर भाजपा के प्रत्याशियों के पास चुनाव प्रचार के लिए 20-25 दिन का समय भी नहीं होगा। ध्यान रहे कि कुछ लोकसभा क्षेत्र और विशेष रूप से ग्रामीण इलाके इतने बड़े हैं कि प्रत्याशियों और उनके समर्थकों का वहां की जनता तक महज 20-25 दिन में पहुंचना आसान नहीं। टिकट वितरण को लेकर पार्टी में जैसी उठापटक हो रही है उससे यही जाहिर होता है कि इसके लिए पहले से कोई ठोस तैयारी नहीं की गई। तैयारी के इस अभाव के लिए भाजपा नेता स्वयं के अलावा अन्य किसी को दोष नहीं दे सकते। इसमें संदेह है कि नरेंद्र मोदी देश भर में प्रत्याशियों के चयन के काम को गहराई से देख पाएंगे, क्योंकि उनका अच्छा-खासा समय चुनावी सभाओं में खप गया और आगे भी खपने वाला है।

टिकट वितरण के काम को समय से पूरा करने में किस तरह ढिलाई बरती गई, इसका पता इससे भी चलता है कि प्रत्याशियों की सूची जारी करने वाले दिनों में पूरे-पूरे दिन विचार-विमर्श होता रहा और तब कहीं जाकर देर रात सूचियों को अंतिम रूप दिया जा सका। यह सही है कि भाजपा में अन्य दलों की अपेक्षा सबकी राय से काम होता है, लेकिन यह राय समय पर बनानी चाहिए थी। अध्यक्ष होने के नाते यह दायित्व राजनाथ सिंह पर अधिक था कि वह प्रत्याशियों का चयन आम राय से करते और समय रहते करते। चुनाव के अवसर पर राजनीतिक दलों में उठापटक कोई नई बात नहीं, लेकिन भाजपा के लिए यह कहीं अधिक चिंता का विषय बनना चाहिए, क्योंकि वह अपने संगठन के ढांचे और निर्णय लेने की प्रक्रिया को एक मिसाल के रूप में प्रस्तुत करती रही है। भाजपा को इसका अहसास होना ही चाहिए था कि टिकट वितरण में खींचतान से उसकी चुनावी संभावनाओं पर विपरीत असर पड़ सकता है-इसलिए और भी, क्योंकि यह खींचतान वरिष्ठ नेताओं के स्तर पर भी नजर आ रही है। टिकट वितरण को लेकर उभरे असंतोष के संदर्भ में भाजपा की ओर से जो सफाई दी जा रही है वह शायद ही किसी के गले उतरे, क्योंकि उसके कार्यकर्ता और समर्थक यह देख रहे हैं कि उम्मीदवारों के चयन में जरूरत से ज्यादा देरी भी हुई और आम राय से फैसले भी नहीं लिए जा सके।

अतिथियों से बदसुलूकी

देश की राजधानी में विदेशी महिलाओं से हो रहे दुर्व्यवहार का असर भारत की पहचान पर पड़ रहा है। हमारे समाज में मेहमान के साथ किसी भी प्रकार का अभद्र व्यवहार निंदनीय है। महिला मेहमान के साथ अभद्रता से पूरे देश का सिर शर्म से झुक जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि दिल्ली में असामाजिक तत्वों को कानून का कोई भय नहीं है। इस वजह से आए दिन विदेशी मेहमानों से बदसलूकी की घटनाएं नहीं होती रहती हैं। गौर करने वाली बात यह है कि जो लोग इन मामलों में शामिल हैं, उनमें पढ़े-लिखे और अच्छे ओहदों पर बैठे हुए शिष्ट कहे जाने वाले लोग भी हैं। इस पूरे मामले पर सरकार के साथ समाज को भी चिंतन करने की जरूरत है। लोगों में गिरते नैतिक मूल्यों को भी जगाना जरूरी है।

दक्षिणी दिल्ली के हौजरानी इलाके में शुक्रवार को एक अफ्रीकी मूल की महिला से सामूहिक दुष्कर्म का मामला सामने आया। इससे पहले बृहस्पतिवार को भी राजधानी के एक डाकघर में बृहस्पतिवार को मंगोलियाई युवती से कस्टम सुपरिटेंडेंट द्वारा छेड़खानी की गई थी। इन दोनों घटनाओं की जितनी भर्त्सना की जाए वह कम है। इन विदेशी महिलाओं के मन में भारत की कैसी छवि बनी होगी, यह हम सभी जानते हैं। ये महिलाएं अपने-अपने देशों में भी भारत की गलत छवि का ही पेश करेंगी। विदेशी महिलाओं के साथ अभद्रता व अपराध की ये कोई पहली या दूसरी घटना नहीं है। कुछ माह पूर्व नई दिल्ली रेलवे स्टेशन के पास भी कुछ युवकों ने रास्ता भटक गई डेनमार्क की एक महिला के साथ सामूहिक दुष्कर्म की वारदात को अंजाम दिया था। मेहमानों को भगवान का दर्जा देने वाली भारतीय संस्कृति का इससे ज्यादा अवमूल्यन भला क्या होगा कि यहां विदेशी महिलाओं की आबरू पर हमले हो रहे हैं। यह एक गंभीर मामला है और इस पर ध्यान दिया जाना जरूरी है। इसके लिए यहां की जनता को भी जागरूक होना पड़ेगा और इस तरह की किसी भी घटना को रोकने की कोशिश करने के लिए तत्पर रहना होगा। पुलिस को भी चाहिए कि ऐसे लोगों से बेहद कड़ाई से निपटे और उन्हें ऐसी सजा दी जाए ताकि वह बाकी लोगों के लिए एक नजीर बन सके। साथ ही उसे इन घटनाओं को रोकने के लिए भी कदम उठाने की जरूरत है। समाज को भी चाहिए कि वह ऐसे लोगों का बहिष्कार करे। इस स्थिति को बदलना बेहद जरूरी है।

राजनीतिक क्षितिज में तेजी से उभरी और चमकी आम आदमी पार्टी का आकर्षण समाप्त होते देख रहे हैं संजय गुप्त

अंत की ओर आकर्षक कहानी

यह कितना विचित्र है कि भ्रष्टाचार के खिलाफ अन्ना हजारे के प्रभावशाली आंदोलन में अरविंद केजरीवाल और किरण बेदी की प्रमुख भूमिका थी, लेकिन समय के साथ आपसी मतभेदों ने तीनों की राह अलग-अलग कर दी। इस आंदोलन से प्रसिद्धि हासिल करने के बाद केजरीवाल ने आम आदमी पार्टी के रूप में एक राजनीतिक दल के गठन का फैसला किया, जबकि किरण बेदी ने पहले तो अन्ना हजारे के साथ रहने के संकेत दिए और फिर नरेंद्र मोदी की पीएम पद की दावेदारी को अपना समर्थन देने का एलान किया। खुद अन्ना हजारे भी अपने भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन की धार एक हद तक गंवा चुके हैं। आप के अस्तित्व में आने के बाद ज्यादातर राजनीतिक दलों ने उसका उपहास ही उड़ाया था। उसे बरसाती मेंढक की संज्ञा भी दी गई, लेकिन जब दिल्ली विधानसभा चुनाव में इस पार्टी ने 28 सीटें जीत लीं तो सभी दलों के होश उड़ गए। आप को यह सफलता इसलिए मिली, क्योंकि दिल्ली की जनता ने कांग्रेस और भाजपा के विकल्प की तलाश पर जोर दिया। लोग कांग्रेस से बुरी तरह नाराज थे और एक बड़े वर्ग ने इस नाराजगी का प्रदर्शन आप को अपना समर्थन देकर किया। दिल्ली में किसी भी दल को बहुमत नहीं मिला और जब सरकार बनने की कोई सूरत बनती नहीं दिखाई दी तो आश्चर्यजनक रूप से कांग्रेस नेतृत्व ने दूसरे सबसे बड़े दल के रूप में उभरी सरकार को अपना समर्थन देने का फैसला किया। खुद कांग्रेस भी अपने इस फैसले को लेकर खासी असमंजस में रही।

दिल्ली के मुख्यमंत्री बनने तक अरविंद केजरीवाल के नजरिये और तौर-तरीकों की आम जनता को अधिक जानकारी नहीं थी, लेकिन जल्दी सफलता पा लेने की चाह में उन्होंने एक ऐसी राह पकड़ी जो उनके प्रति लोगों का भरोसा डिगाने वाली रही। केजरीवाल की सरकार ने वोट बैंक से प्रेरित अपने एजेंडे को पूरा करने के लिए मर्यादाओं और परंपराओं को भी ताक पर रखने में संकोच नहीं किया। केजरीवाल और उनके साथियों में राजनीतिक अनुभव का अभाव तो था ही, उनकी ओर से ऐसी सामान्य समझदारी का भी परिचय नहीं दिया गया जिसकी एक लोकतांत्रिक सरकार से अपेक्षा की जाती है। मुख्यमंत्री के रूप में केजरीवाल की अपने धरने के लिए गणतंत्र दिवस समारोह को भी बाधित करने की धमकी इसका एक उदाहरण है। जब केजरीवाल को लगा कि उनकी सरकार कुछ खास नहीं कर सकती और लोकसभा चुनाव में भी बड़ी सफलता हासिल करने का अच्छा मौका है तो उन्होंने पलायन करने में तनिक भी देर नहीं लगाई।

दिल्ली के मुख्यमंत्री के रूप में अपने 49 दिनों के कार्यकाल में केजरीवाल ने अपनी साख और छवि को कुल मिलाकर गंवाने का ही काम किया। रही-सही कसर सनसनी फैलाने के उद्देश्य से दिए गए उनके बयानों ने पूरी कर दी। इन बयानों ने यह साबित कर दिया कि केजरीवाल और उनके दल में परिपक्वता का घोर अभाव है। इसका एक प्रमाण तब भी मिला जब आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन के चलते गुजरात में रोडशो के दौरान रोके जाने पर केजरीवाल ने इसे नरेंद्र मोदी की कार्रवाई बताया और उनके इस आक्षेप के फलस्वरूप आप समर्थकों ने दिल्ली में भाजपा मुख्यालय पर धावा बोल दिया। इसके कुछ दिनों बाद केजरीवाल ने मीडिया को निशाने पर ले लिया और बिना किसी साक्ष्य-सुबूत के यह आरोप मढ़ दिया कि मीडिया नरेंद्र मोदी के हाथों बिका हुआ है और यदि उनकी पार्टी सत्ता में आती है तो मीडिया वालों को जेल भेज दिया जाएगा। यद्यपि वह बाद में अपने इस बयान से पलट गए, लेकिन देश ने उनका यह दृष्टिकोण अच्छी तरह देखा-सुना।

केजरीवाल के इन तौर-तरीकों से सबसे अधिक निराशा पढ़े-लिखे मध्यम वर्ग और विशेष रूप से बौद्धिक समूह को हुई है। यह वही वर्ग है जिसने केजरीवाल और उनकी राजनीति के बुनियादी सिद्धांत को सिर-आंखों पर बिठाया था। देश के बुद्धिजीवी वर्ग ने अरविंद केजरीवाल और उनके दल में एक सशक्त विपक्ष की छवि देखी थी। अब इस वर्ग समेत पूरा देश इससे निराश नजर आ रहा है कि केजरीवाल सिर्फ सनसनी फैलाने वाली राजनीति कर रहे हैं। उनसे भारतीय राजनीति में सार्थक बदलाव लाने की जो आशाएं की गई थीं वे धूल में मिल गई हैं। इसकी भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि वह एक के बाद एक विवादों से घिरते जा रहे हैं। उन्हें अपने कथित अनुशासित समर्थकों के असंतोष से जूझना पड़ रहा है और टिकट के लिए पैसे लेने वाले लोगों से भी। वह अपनी बातों से मुकरने में भी माहिर हो गए लगते हैं। जब इस बारे में सवाल उठते हैं तो वह दो टूक कहते हैं कि आखिर इसमें कोई गुनाह है क्या? वह जिस तरह गैस के दाम को लेकर आधे-अधूरे तथ्यों के साथ नित- नए आरोप लगा रहे हैं वे भी लोगों और खासकर उद्यमियों को रास नहीं आ रहे।

राजनीतिक विश्लेषक अब इस नतीजे पर भी पहुंचने के लिए विवश हैं कि आप में शामिल लोग उस रिक्तता को भर रहे हैं जो वामपंथी दलों के लगभग अप्रासंगिक हो जाने के कारण भारतीय राजनीति में आई है। उद्योग जगत के प्रति आम आदमी पार्टी के आक्रामक तेवर वाम दलों की चिर-परिचित राजनीति से मिलते-जुलते हैं। यह वामपंथी विचाराधारा की ही देन है कि उद्योग जगत को आम आदमी के हितों के विरोध में खड़ा कर दिया गया। अपने इन्हीं विचित्र तौर-तरीकों के कारण आज वाम दल अपनी अहमियत खो चुके हैं। आप में शामिल लोगों ने भी अनशन-आंदोलन के नाम पर एक किस्म की नकारात्मकता फैलाने का काम किया। आप के उदय के उपरांत एक ऐसा समय भी आया जब भाजपा को अपनी चुनावी संभावनाओं पर ग्रहण लगता नजर आया, लेकिन अपनी गैर-जिम्मेदार राजनीति से अरविंद केजरीवाल के नेतृत्व वाले दल ने खुद ही अपनी साख और लोकप्रियता को गिराने का काम किया। आप के घटते असर से भाजपा का मनोबल फिर सातवें आसमान पर है। यह अलग बात है कि भाजपा के कुछ नेता अति आत्मविश्वास के चलते अपना और पार्टी का नुकसान करते नजर आ रहे हैं। टिकट वितरण को लेकर भाजपा के भीतर असंतोष के जो स्वर नजर आए उससे उन लोगों को निराशा ही हुई जो मोदी के उत्कर्ष की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

निःसंदेह आप का उदय और उभार भारतीय राजनीति का एक उल्लेखनीय-अभूतपूर्व घटनाक्रम है। इसकी उम्मीद कम ही है कि कोई नया-नवेला राजनीतिक दल आप सरीखी सफलता दोहरा सकेगा। उतना ही सत्य यह भी है कि अरविंद केजरीवाल खुद को मिले मौके को सही तरह भुना नहीं सके। वह व्यवस्था पर चोट तो करते रहे, लेकिन खुद को विकल्प के रूप में प्रस्तुत करने में असफल रहे। आप अपने अनशनकारी तेवरों को छोड़ नहीं पा रही है। उसके नेता अपने इन तेवरों को सही भी मानते हैं, लेकिन शासन चलाने के लिए कौशल और विश्वास की आवश्यकता होती है। जनता समस्याओं से त्रस्त है और भ्रष्टाचार से छुटकारा चाहती है, लेकिन यह काम केवल अनशन और धरना-प्रदर्शन से नहीं हो सकता है। देश को ऐसे राजनीतिक दल की आवश्यकता है जो संवैधानिक मर्यादाओं में रहते हुए सबको साथ लेकर चल सके। भारत सिर्फ और सिर्फ आंदोलनों-अनशनों पर भरोसा करने वाले राजनीतिक दलों का बोझ नहीं उठा सकता, क्योंकि यह तय है कि ऐसे दल अन्य दलों के विचारों के साथ तालमेल नहीं बिठा सकते। जो भी हो, स्थापित राजनीतिक दलों को यह सबक अवश्य सीखना चाहिए कि अगर उन्होंने भ्रष्टाचार को दूर करने और शासन की खामियों को दुरुस्त करने की अविलंब कोशिश नहीं की तो केजरीवाल और उनके साथियों जैसे लोग पूरे देश में उभर आएंगे, जो कुल मिलाकर राजनीतिक परिदृश्य में अफरातफरी फैलाने का ही काम करेंगे।

response@jagran.com

लोकतंत्र का सवाल

◆ भारत सिर्फ आंदोलनों-अनशनों पर भरोसा करने वाले दलों का बोझ नहीं उठा सकता, क्योंकि यह तय है कि ऐसे दल अन्य दलों के विचारों के साथ तालमेल नहीं बिठा सकते

नाकामी पर नई निगाह

गोपनीय रिपोर्ट सामने आने के बाद 1962 के युद्ध में चीन से मिली पराजय की सही समीक्षा पर जोर दे रहे हैं **जबिन टी. जैकब**

चीन के साथ 1962 के युद्ध में भारतीय सेना की हार पर हेंडरसन ब्रुक्स-प्रेम भगत रिपोर्ट का एक बड़ा भाग पिछले दिनों एक ब्रिटिश समाचार पत्र के पूर्व भारतीय संवाददाता नेविले मैक्सवेल द्वारा ऑनलाइन जारी कर दिया गया। इस घटनाक्रम से हम सभी को उस युद्ध के संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण सवालों पर विचार करने का अवसर मिल गया। सवाल इस विवाद पर भारतीय आचरण से भी संबंधित हैं और अपने देश में नीति निर्धारण की प्रकृति से भी। सबसे पहले तो हेंडरसन ब्रुक्स रिपोर्ट तत्काल ही हम सभी के लिए उपलब्ध होनी चाहिए थी, लेकिन ऐसा नहीं हो सका। भारत सरकार ने औपचारिक रूप से तो इसे अभी भी सार्वजनिक नहीं किया है। सार्वजनिक जवाबदेही और संस्थागत सुधार के लिहाज से इस रिपोर्ट का बिना किसी देरी के सार्वजनिक किया जाना आवश्यक था। यद्यपि इस रिपोर्ट का काफी हिस्सा मैक्सवेल द्वारा अपनी विवादास्पद पुस्तक 'इंडियाज चाइना वॉर' में आ चुका है, बावजूद इसके हालिया घटनाक्रम से हमें 1962 के युद्ध के पहले और इसके दौरान भारतीय सैन्य नेतृत्व की भूमिका के संदर्भ में अनेक सवाल नजर आने लगे हैं। रिपोर्ट तैयार करने वालों को दरअसल यह निर्देश दिया गया था कि वे जांच के अंग के रूप में सैन्य मुख्यालय के कामकाज की समीक्षा न करें। नतीजा यह हुआ कि इसमें कई ढीले छोर उभर आए हैं। फिर भी यह स्पष्ट है कि भारतीय सेना राजनीतिक नेतृत्व के 'फॉरवर्ड पॉलिसी' के विचार का कोई उपयोगी और विश्वसनीय विकल्प उपलब्ध कराने में नाकाम रही। इससे भारत में सैन्य-नागरिक संबंधों का व्यापक मसला हमारे सामने उभरता है। ये संबंध हमेशा कठिन रहे हैं। 1962 की लड़ाई की एक विरासत (विशेषकर हेंडरसन ब्रुक्स रिपोर्ट सार्वजनिक न होने के कारण) यह रही है कि पराजय के लिए बड़ी आसानी से तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू और उनके रक्षामंत्री कृष्णा मेनन को उत्तरदायी ठहरा दिया जाता है- खासकर इस आधार पर कि उन्होंने सेना के कामकाज में दखलंदाजी की। इसके लिए नौकरशाह वर्ग भी इस्तेमाल हुआ अथवा उसका इस्तेमाल किया गया ताकि लापरवाही की चूक को पाटा जा सके। नौकरशाही तभी आगे आती है जब उन्हें श्रेय लेना होता है अथवा राजनेताओं या मंत्रियों के कान भरने होते हैं। दूसरी ओर सैन्य अधिकारी खराब रक्षा तैयारियों और दूसरी अन्य कमियों को इसके लिए जिम्मेदार ठहराते हैं। इसमें दो राय नहीं कि सैन्य जरूरतों की जटिलता के बारे में सिविल मैनेजरों की समझ कम होती है। सैनिकों की शारीरिक और भावनात्मक परेशानियां भी कम चिंता का विषय नहीं हैं। सैन्य अधिकारियों और सैनिकों, दोनों के लिए ही अपने परिवार से दूर रहते हुए आंतरिक सुरक्षा गतिविधियों में शामिल होना शारीरिक और मानसिक तौर पर एक कठिन काम है। यहां तक सेना भी कई बार यह नहीं समझ पाती कि वह एक राष्ट्र के रूप में हमारे गणतंत्र और उसके मूल्यों की पर्याप्त सेवा नहीं कर पा रही। हमारी लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रणाली का केंद्रीय सिद्धांत यही है कि सैन्य प्रतिष्ठान को नागरिक प्रशासन के अधीन रखा जाए। वास्तव में सेना प्रमुख के रूप में जनरल वीके सिंह के कार्यकाल में कई विवाद खड़े हुए और हाल के दिनों में एडमिरल डीके जोशी के इस्तीफा प्रकरण से भी इन दोनों पेशेवर सेवाओं की दुर्बलता का प्रदर्शन हुआ। इस संदर्भ में सैन्य और नागरिक नौकरशाही को एक दूसरे के नजरिये और हितों पर ध्यान देने की जरूरत है। खासकर तब जबकि राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव में हितों में टकराव पैदा हो जाए।

विचित्र अनदेखी

◆ दो प्रमुख खुफिया एजेंसियों की भूमिका के बारे में कोई भी संसदीय जांच नहीं हुई, जबकि किसी भी देश के लिए ऐसा किया जाना जरूरी था

ऐसी स्थिति को टालने के लिए मध्यस्थता अथवा बीच-बचाव जरूरी है। ऐसी ही गलतियों के कारण 1962 में स्थितियां अधिक जटिल हुईं। देश में रक्षा उद्योगों में जवाबदेही के अभाव और रक्षा उपकरणों की खरीदारी के निर्णयों में भ्रष्टाचार के चलते ही इस तरह की अतिरिक्त समस्याएं सामने आती हैं। रक्षा से जुड़ा तीसरा मुद्दा हमारी क्षमता अथवा तैयारियों का है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि कई दशकों तक तमाम भारतीय राजनयिकों की बीजिंग को लेकर गलत धारणा रही और वह यह समझ ही नहीं सके कि चीन की कम्युनिस्ट सत्ता का वास्तविक चरित्र और उद्देश्य क्या है? इसी तरह हमारे मुख्य खुफिया स्रोत इंटेलिजेंस ब्यूरो की भी धारणा यही रही कि चीन भारत की फारवर्ड पॉलिसी का विरोध नहीं करेगा। किसी भी आधिकारिक रिपोर्ट में 1962 में हुई पराजय को लेकर इंटेलिजेंस ब्यूरो अथवा भारतीय विदेश मंत्रालय के कामकाज का ब्योरा नहीं है। आज की तिथि तक भारत की दो प्रमुख खुफिया एजेंसियों की भूमिका के बारे में कोई भी संसदीय जांच नहीं हुई, जबकि किसी भी स्वाभिमानी लोकतांत्रिक देश के लिए ऐसा अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए था।

यहां चौथा मुद्दा है कि आखिर क्यों नागरिक और सैन्य संस्थाओं के बीच बेहतर तालमेल नहीं है अथवा 1962 के उत्तरार्ध में चीन की गतिविधियों का पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सका? स्पष्ट तौर पर 1950 में तिब्बत पर चीन के कब्जे के बाद सेना, नौकरशाही, राजनीतिक वर्ग और अकादमिक स्तर पर चीन के संदर्भ में सभी पहलुओं पर व्यापक और गहन रूप में अध्ययन और शोध किया जाना चाहिए था। इस प्रकार हम चीन की किसी भी भौगोलिक विस्तार की कार्रवाई की स्थिति में तैयार रहते। दुर्भाग्य से ऐसा कुछ भी नहीं किया गया और अक्साई चिन में चीन द्वारा बनाई गई सड़क की जानकारी भी एक संयोग ही था। वास्तविकता यही है कि इन हारों के बाद भी हमारी सरकार और उसकी एजेंसियां विपरीत दिशा में कार्य करती रहीं और सीमा क्षेत्र में बुनियादी ढांचे को विकसित करने पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। हमारे देश में चीन पर अध्ययन को लेकर बहुत ध्यान नहीं दिया जाता और न ही हमें उसके पास उपलब्ध संसाधनों की पर्याप्त जानकारी है।

(लेखक इंस्टीट्यूट आफ चाइनीज स्टीज से जुड़े हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

संकल्प और समर्पण

मानव एक ऐसे चौराहे पर खड़ा है जहां से अशुभ कर्म करके वह अपनी चेतना को नीचे गिराकर पशु जगत की चेतना को धारण कर सकता है। मानव यदि प्रयास करे तो वह अपनी चेतना को देवतुल्य भी बना सकता है। सवाल यह उठता है कि अपनी चेतना को कैसे विकसित कर देवतुल्य बनाया जाए? इस महत्वपूर्ण कर्म के लिए उसे सर्वप्रथम संकल्प की साधना करनी होगी। ऐसा इसलिए, क्योंकि मन की गति जल की भांति नीचे की ओर बहने की है और यह मन की पुरानी आदत भी है। इसी कारण मन बाजार जाने के लिए तुरंत उतावला हो जाता है, परंतु मंदिर जाने में जोश कम ही दिखाई पड़ता है। इस दशा में संकल्प द्वारा मन को जीतना आवश्यक है। ऐसा इसलिए, क्योंकि मन ही शरीर का निदेशक है।

संयमवान मन के द्वारा शरीर केवल शुभ कर्म ही करता है। संकल्प रूपी हथियार से साधक मन को वश में कर लेता है, तब फिर मन वैसे ही नाचने लगता है, जैसे मदारी बंदर को नचाता है। हम सब प्रायः शरीर के तल पर जीते हैं। यानी इंद्रियों के गुलाम है। आंख दृश्य देखना चाहती है, कान अच्छा शब्द (स्तुति) सुनना चाहते हैं। ये उदाहरण दर्शाते हैं कि मन के आदेशानुसार शरीर कार्य करता है, परंतु संकल्प द्वारा मन वह नहीं कर पाता जो वह करना चाहता है। हर नया अच्छा कार्य करने के लिए मन संकल्प द्वारा ही तैयार होता है, अन्यथा मन पुराने ढर्रे पर चलने का आदी है। दिन में रोज सोचते रहें कि कल से प्रातः टहलने जाना है, पर कल प्रातः नींद के वशीभूत हो हम टहलने से चूक जाते हैं। संकल्प द्वारा ही नींद को त्यागकर प्रातः हम टहलने में समर्थ हो पाते हैं। समर्पण का अर्थ है-अहंकार को पूर्णतः नष्ट कर देना। साधना के सभी साधन भक्ति, ज्ञान और राजयोग मूलतः अहंकार को शून्य करने की साधना है। अहंकार और मन का चोली-दामन का साथ है। केवल संकल्पित मन ही अहंकार को गिराता है। अहंकार ही चैतन्य और शरीर के बीच का पर्दा है। अहंकार ही सब विकारों का मूल है। इसलिए स्वयं को जानने के लिए अहंकार रूपी पर्दा हटाना अति आवश्यक है। अहंकार हटाने की विधि समर्पण है। समर्पण का अर्थ है कि मैं कुछ भी नहीं हूं। अहंकार का अर्थ है सिर्फ मैं श्रेष्ठ हूं, अन्य सब तुच्छ हैं।

◆ **स्वामी ध्यान बीत काम**

जागरण Junction
AAPKI AWAAZ, AAPKA BLOG
www.jagranjunction.com

मनमोहन सिंह की दूरदर्शिता

कभी वह दौर था जब सामंतवाद हावी था और उस समय शासक वर्ग चाहता था कि लोग मोहताज रहें, लेकिन बाजारवाद का फंडा यह है कि हर आदमी को अतिरिक्त आमदनी के लायक बनाया जाए ताकि बाजार में उसे भी लाने में सहूलियत हो। इसीलिए मनरेगा की मजदूरी इतनी की गई है कि एक मजदूर मोबाइल खरीदे और फिर रेगुलर रीचार्ज कूपन खरीदकर उपभोक्तावाद का निवाला बने। भले ही जब वह किसी गंभीर बीमारी से ग्रसित हो जाए तो इलाज के अभाव में उसे दम तोड़ना पड़े। नए आर्थिक सुधारों के क्रम में बीपीएल तक के लिए अतिरिक्त आय की स्थितियां बनाई गईं और इसके बाद उसे उपभोक्तावाद के इंद्रजाल में फंसाया गया, लेकिन विश्व के जाने-माने अर्थशास्त्री डॉ. मनमोहन सिंह इस प्रक्रिया को स्थायी रूप से जारी रखने की दूरदर्शिता नहीं दिखा सके। उनमें अटल बिहारी वाजपेयी की तरह जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक वस्तुओं की महंगाई पर लगाम रखने का कौशल नहीं दिखा। -केपी सिंह

पूरा ब्लॉग पढ़ने के लिए यथावत टाइप करें : http://bit.ly/1gEUuaz

जहरीले लबों पर मीठी सी मुस्कराहट

बर्बादियों का जश्न खंडहर की सजावट
अंदर दरार गहरी बाहर की सजावट
अपनों के बीच गैर साजिशें हैं जालिम
जहरीले लबों पर मीठी सी मुस्कराहट
गम हमारे देखकर हमदर्दी जताना
खिल्ली उड़ाना पीछे सबकी यही आदत
खूंखार जानवर हैं दिल पर करें हमला
मक्कारियों में करते आंसू की मिलावट
तू बचके रहना फंसना न भंवर में
ये सच है जिंदगी में बनावट ही बनावट। -शिखा कौशिक

पूरा ब्लॉग पढ़ने के लिए यथावत टाइप करें : http://bit.ly/1gEOuPf

अभी आराम करें चिदंबरम

लोकसभा के चुनावी मैदान से वित्तमंत्री पी चिदंबरम ने पीठ क्या दिखाई कि उनके 'शुभचिंतकों' को मौका मिल गया। संप्रग सरकार का हाइ प्रोफाइल चेहरा रहे चिदंबरम के अपनी जगह बेटे कार्ति को चुनाव टिकट दिलाने के बाद कांग्रेस के भीतर कई नेताओं ने उनके राज्यसभा का रुख करने की संभावनाओं का रास्ता रोकना शुरू कर दिया है। कांग्रेस गलियारों में खबरें तैर रही हैं कि कम से कम तीन केंद्रीय मंत्रियों ने पार्टी अध्यक्ष सोनिया गांधी से आग्रह किया है कि चिदंबरम को संसदीय जिम्मेदारी से तीन-चार साल का अवकाश दिया जाना चाहिए। कांग्रेस से बाहर जाकर लौटे चिदंबरम को लेकर शिकायती नेताओं की दलील है कि उन्हें पार्टी और अध्यक्ष के प्रति निष्ठा जताते हुए चुनाव मैदान में उतरना चाहिए था। माना जा रहा है कि चिदंबरम की कोशिश कर्नाटक से राज्यसभा में दाखिल होने की है। ऐसे में स्थापित कांग्रेस परंपरा के अनुसार फैसला पार्टी अध्यक्ष सोनिया गांधी के हाथ है।

हालैंड गए साहब

फर्रुखाबाद में चुनाव मैदान में ताल ठोंकने के बाद नेताजी हालैंड रवाना हो गए हैं। चुनाव के दौरान ऐसी बेफिक्री तो तभी होती है जब नतीजे के बारे में पहले ही स्पष्ट तौर पर पता हो। कुछ इसी तरह की खुशफहमी में विलायत की ओर रुख कर गए हैं। चुनाव की सरगर्मी से दूर सलमान सुकून से रवाना हो गए हैं। चुनाव में जीत हार से जिसे परेशानी हो, चिंता वह करे। साहब विलायत जाएं भी तो क्यों नहीं, देश के विदेश मंत्री जो ठहरे। उनके विदेश रवाना होने पर उनके एक मंत्रिमंडलीय सहयोगी ने चुटकी ली तो बोल पड़े फर्रुखाबाद से कम महत्वपूर्ण नहीं है देश का काम है। तभी तो कांग्रेसी कह रहे हैं कि उत्तर प्रदेश में कांग्रेस की हालत कुछ ऐसे ही नेताओं ने पस्त कर रखी है।

हाकी से प्यार

कुछ नेता और नौकरशाह भले ही अपने लिए योजना भवन को भाग्यशाली अथवा लकी मानते हों, लेकिन एक व्यक्ति ऐसे भी हैं जो यहां से दूर जाकर खुश हैं। इनका नाम है अजय छिब्बर जो स्वतंत्र मूल्यांकन कार्यालय के मुखिया हैं और उन्हें राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त है। अजय छिब्बर की खुशी की वजह उनका नया कार्यालय है जो शिवाजी स्टेडियम की बिल्डिंग में है। स्टेडियम में अक्सर हॉकी के मैच होते हैं। अजय छिब्बर खुद भी हॉकी के खिलाड़ी रहे हैं। जब वह कालेज में थे तो इसी मैदान पर खेलने आते थे। अब तो आफिस ही यहां है। इसलिए हॉकी का मैच हो और अजय छिब्बर इसे न देखें ऐसा बहुत कम होता है।

कविता का स्पष्टीकरण

पिछली बार इन्होंने कविता और साहित्य के सहारे ही नाराजगी सार्वजनिक की थी, लेकिन अपने समर्थकों को टिकट दिलवाने के इस दांव में उन्हें ज्यादा फायदा मिला नहीं। उल्टा पार्टी कार्यकर्ताओं का एक वर्ग उनसे और अधिक नाराज हो गया। हालांकि यह सही है कि उनका मूल धंधा तो कविताई का ही है। इसलिए वह इससे तो चूकने वाले हैं नहीं। जाहिर है कि ऐसे में अब वह शेरो-शायरी करते वक्त खासी सावधानी बरत रहे हैं ताकि कोई नया बखेड़ा न खड़ा हो जाए। कुछ भी पढ़ने से पहले बाकायदा स्पष्टीकरण दे दिया जाता है कि यह सिर्फ एक शेर है, इसलिए इसका कोई और मतलब नहीं निकाला जाए।

छवि को लेकर परेशान

जीत को लेकर आशंकित वित्तमंत्री पी चिदंबरम खुद चुनाव मैदान से तो हट गए हैं। लेकिन अपनी छवि को लेकर अभी भी चौकस हैं। इसीलिए वो जाते-जाते एक दो काम ऐसे करना चाहते हैं जिनसे बतौर वित्तमंत्री उनकी छवि चुनाव बाद भी अच्छी बनी रहे। इसीलिए वो केंद्रीय मंत्रिमंडल पर पोंजी स्कीमों को नियंत्रण में रखने के लिए सेबी कानून के अध्यादेश को फिर से लागू करवाने का दबाव बनाए हुए हैं। यह जानते हुए भी कि चुनावों की घोषणा के बाद आदर्श आचार संहिता लागू हो चुकी है, वो इस बात पर जोर दे रहे हैं कि चुनाव आयोग की मंजूरी लेकर सरकार को यह अध्यादेश लागू कर देना चाहिए। बताते हैं कि कैबिनेट की पिछली बैठक में उन्होंने साथी मंत्रियों के बीच सहमति बनाने की काफी कोशिश भी की।

ट्वीट ट्वीट

ममता बनर्जी, जयललिता, सोनिया गांधी, मायावती और सुषमा स्वराज। इन पांच महिलाओं के पास उस गठबंधन की कुंजी है, जो लोकसभा चुनावों के बाद भारत का भावी प्रधानमंत्री तय करेगा।

शेखर कपूर

ऐसा लगता है कि भारतीय जनता पार्टी को आयातित नेताओं पर कुछ ज्यादा ही भरोसा है और शायद यही कारण है कि उनके लिए चौबीसों घंटे काउंटर खुले हैं। पर्ची कटाओ और पार्टी में शामिल हो जाओ।

अजीत अंजुम

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या सतपाल महाराज के भाजपा में शामिल होने के बाद आपको उत्तराखंड सरकार गिरने के आसार नजर आ रहे हैं?

आज का सवाल

क्या आपको लगता है कि आरएसएस की नसीहत के बाद आडवाणी को सक्रिय राजनीति से अलग हो जाना चाहिए?

अपनी राय और अधिक लोगों तक पहुंचाने के लिए अपने मोबाइल के मैसेज बॉक्स में जाकर POLL लिखें, स्पेस देकर Y, N या C लिखकर 57272 पर भेजें
Y-हां, N-नहीं, C-कह नहीं सकते

परिणाम एसएमएस से प्राप्त नतीजों के साथ जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है। सभी आंकड़े प्रतिशत में।